International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(2): 154-156

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(2): 154-156
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-01-2021
Accepted: 23-02-2021

Shruti Rai
Assistant Professor, Department of Sanskrit, University of Delhi, New Delhi, India

Corresponding Author:
Shruti Rai
Assistant Professor, Department of Sanskrit, University of Delhi, New Delhi, India

कर्म-सिद्धान्त के विविध पक्षों का परिचयात्मक अनुशीलन

Shruti Rai

सारांश

भारतीय संस्कृति कर्मप्रधान संस्कृति है। अतः प्रत्येक शास्त्र कर्म के सिद्धान्त पर अपने विचार अवश्य प्रस्तुत करता है, विशेषकर भारतीय दर्शन परम्परा। ज्ञातव्य है कि सभी भारतीय दार्शनिक परम्पराओं ने अपने अपने मूलभूत अवधारणाओं के आधार पर कर्म के सिद्धान्त की विशद विवेचना की है। अतः आस्तिक दर्शन एवं नास्तिक दर्शन आदि ने कर्म के विविध पक्षों का अवलोकन किया है, उदाहरण के लिए- मीमांसा दर्शन की यज्ञपरक कर्म की व्याख्या है, जबकि जैन दर्शन नैतिकता के आधार पर कर्म के सिद्धान्तों की स्थापना करता है। इसीप्रकार भगवद्गीता, उपनिषदादि शास्त्रों में निष्काम कर्म के लिये प्रेरणा दिया गया है। इसप्रकार से हम देख सकते हैं कि विभिन्न भारतीय दर्शनों में कर्म के अलग अलग पक्षों की विवेचना की गई है। प्रस्तुत शोधपत्र में इसी बिन्दु पर परिचयात्मक रूप में प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

कूट शब्द: कर्म, निष्काम कर्म, ममता, ऋत, कर्ममीमांसा

प्रस्तावना

कर्म का सिद्धान्त भारतीय अध्यात्मशास्त्र की मूलभूत अवधारणाओं में से एक है। कर्म के अर्थ में प्रायः नीति, कर्तव्य, धर्म शब्दों का प्रयोग किया जाता है। सर्वविदित है कि कर्म-सिद्धान्त मनुष्य के बाह्य आचार-विचार, नैतिक दृष्टि, पाप-पुण्य आदि का निर्देशक तो होता ही है। इसके साथ में भारतीय कर्ममीमांसा यह भी स्वीकार करती है कि कर्म के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन होता है। ऋग्देव में प्रतिपादित ऋत का सिद्धान्त इस तथ्य की पुष्टि करता है। यह मनुष्यजाति को सृष्टि के प्रत्येक तत्त्व के साथ अन्तर्सामञ्जस्य से जीवन जीना सिखाता है। पुण्य-पाप का भय जीवन की दिशा निर्धारित करता है, जो पूर्णतया नैतिक मूल्यों पर अवस्थित होती है। यह मनुष्य को सृष्टि के सभी प्राकृतिक तत्त्वों एवं प्राणियों के प्रति संवेदनशील बनाता है। एक संवेदनशील व्यक्ति अनावश्यक रूप से मूक जीव-जन्तु को सताने के पाप से बचने का प्रयत्न करता है। इसीप्रकार भारतीय परम्परा में वृक्ष, वनस्पति आदि भी एकप्रकार के जीव होते हैं, जिनकी अपनी संवेदनाएं भी होती हैं। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तम में नायिका शकुन्तला जो स्वभाव से अत्यन्त कोमल है, अपने आस-पास के जीव-जन्तु, पेड-पौधों के लिए भी दयाभाव रखती है, उनके लिए भी सुरक्षा की भावना रखती है, उन्हें अनावश्यक कष्ट पहुचाना उसे कदापि स्वीकार नही है। इसप्रकार कर्म का सिद्धान्त सृष्टि का संतुलन बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कर्म का सिद्धान्त भारतीय मनीषियों के लिये प्रारम्भ से ही आकर्षण का केन्द्र रहा है। ऋग्वेद में वर्णित ऋत का सिद्धान्त कर्म का बीजभूत सिद्धान्त माना जाता है। ऋत का सिद्धान्त सत्य का सिद्धान्त है। यह सबका मूल कारण माना गया है। संसार में जो कुछ भी है, उसका कारण ऋत है।

यह समस्त विश्व में व्याप्त है। यह विश्व का संचालन और नियंत्रण करता है। देवता तथा मनुष्य सभी इसका पालन करते हैं। वह पाप करनेवालों को घोर अंधकार में डालते हैं जहाँ से इन पापियों का प्रत्यावर्तन नहीं होता। इसी प्रकार अच्छे कर्म करनेवालों को श्रेष्ठ सुखों की प्राप्ति होती है। मीमांसा दर्शन में कर्म की विशद विवेचना है। यही कारण है कि मीमांसा दर्शन को कर्म-मीमांसा नाम से भी सम्बोधित करते हैं, यह यज्ञ-यागादि पर आधारित कर्म की स्वीकृति देता है। मीमांसा के कर्म का सिद्धान्त कर्मवाद कहलाता है, जो स्वार्थ की भावना से प्रेरित हैं। इसप्रकार इस दर्शन में कर्म शब्द का संकुचित अर्थ में व्याख्या किया गया है। इनके अनुसार, यज्ञ करने पर एक अदृष्ट शक्ति या अपूर्व उत्पन्न होता है, जो उचित समय आने पर यज्ञ के अनुसार वाञ्छित फल देती है। यज्ञकर्ता सकाम भाव से वर्तमान जन्म के यज्ञ-यागादि कर्मों द्वारा स्वर्ग-प्राप्ति हेतु कर्मों का अनुष्ठान करता है। दार्शनिक परम्पराओं में यह समझाने का प्रयास किया गया है कि कर्म का शाश्वत तथा सार्वभौम नियम जगत् की नैतिक व्यवस्था का आधार है। उपनिषदों में इस तथ्य को स्पष्टतर रुप में समझाया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार मनुष्य का कर्म ही उसके साथ जाता है। आत्मा का जैसा चरित्र एवं व्यवहार होता है वह वैसा ही हो जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार सुंदर चरित्र वाले व्यक्ति अच्छी योनि प्राप्त करते हैं, जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य योनि और निंद्य चरित्रवाले व्यक्ति नीच योनियों में जन्म लेते हैं, जैसे कुत्ते, सुअर, चांडाल आदि। कौषीतकी उपनिषद् में कर्मनियम का स्पष्ट उल्लेख है कि जीव अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कीड़े, पतंगे, मछली, पक्षी, सिंह, सर्प और मनुष्य आदि योनियों में जन्म लेते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में अव्यवस्था तथा संयोग के लिए कोई स्थान नहीं है। प्राणियों का जन्म, उनका विकास, उनके सुख दु:ख आदि की अनुभूति कर्म के द्वारा नियंत्रित होती रहती है। उन्हें उनके कर्मानुसार फल की प्राप्ति अवश्य होती है। ईशावास्योपनिषद् का यह श्लोक तो निष्कामरूप से कर्म करते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहने की शिक्षा देता है-

कुर्वन् एवेह कर्माणि जिजीविषेतं शतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ [i]

धर्मशास्त्रों में भी नैतिक दृष्टीकोण से कर्म के फलों की चर्चा की गयी है। मनुस्मृति के १२ वें अध्याय में कर्मों के व्याख्या में नैतिक दृष्टिकोण को भी आधार बनाया गया है। मनु ने मनुस्मृति के १० अध्याय के ६३ श्लोक में धर्म-अधर्म पर विचार किया है। उनके अनुसार, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच एवम् इन्द्रियनिग्रह सारे वर्णों के द्वारा ग्रहण करने योग्य धर्म हैं-

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। [ii]

धर्मशास्त्रो में चतुर्वर्णो के आधार पर भी कर्तव्यों का निर्धारण होता है। इसके अतिरिक्त नित्य-नैमित्तिक, काम्य तथा निषिद्ध कर्मों की भी विशद विवेचना होती है। नीतिशास्त्र नामक ज्ञान परम्परा में भी कथाओं, सूक्तियों के द्वारा कर्तव्य-अकर्तव्य पर सूक्ष्म विचार किया गया है। कर्मों की विविधता तथा उससे प्राप्त होने वाले फल को सरलता से समझाने के लिये कथाओं, सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। इनका मुख्य ध्येय यही समझाना है कि कर्म के अनुसार फल प्राप्तव्य है। अतः अच्छे कर्म करने चाहिये। अतः नैतिकता ही कर्म तथा कर्मफलों का मुख्य मापक है।

इसप्रकार कर्म के सैद्धान्तिक तथा उनके प्रायोगिक पक्ष दोनो पर ही भारतीय ज्ञान परम्परा में विस्तार से विचार-विमर्श किया है। किन्तु समस्या यह है कि वे कर्म जो शास्त्रों में नैतिक कर्म या धार्मिक कर्म के रुप में या किसी भी प्रकार से स्वीकार किये गये हैं, निरपेक्षरूप से प्रत्येक परिस्थिति में पालन करने योग्य नही है। मीमांसा दर्शन का सिद्धान्त स्वार्थ की भावना से प्रेरित है। जैसे उपनिषदों में, धर्मशास्त्रों में अहिंसा निर्विवादरूप से महान् धर्मों में से एक माना गया है। किन्तु मनुस्मृति ८.३५० [iii] अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में एक अपवादस्वरूप स्थिति की चर्चा करती है। इसके अनुसार, अहिंसा प्रत्येक स्थिति में आचरणीय नही है। अतः यदि कोई आततायी मनुष्य आपके सामने आ जाये तो उस दुष्ट मनुष्य को अवश्य मार डालना चाहिए, उस समय यह विचार नही करना चाहिए कि वह आततायी वृद्ध है, बालक है या विद्वान् ब्राह्मण है।

गुरुं वा बालवृद्धी वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥

गीता में साक्षात् अर्जुन को धर्म की स्थापना के लिये शत्रुओं का विनाश करना पडा। इसीप्रकार, सत्य नामक गुण को उपनिषदों में भी सर्वश्रेष्ठ गुण माना गया है, किन्तु जिस सत्य से किसी का अहित हो वह बोलना उचित नही है। महाभारत, शान्तिपर्व ३१९.१३; २८७.१९ में नारद स्वयं

शुक से कहते हैं कि सत्य बोलना श्रेयकारी है, किन्तु सत्य से भी अधिक ऐसा वचन ज्यादा श्रेयस्कर है, जिससे सभी प्राणियों का हित हो–

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम॥ [iv]

जैन दर्शन में नैतिकता के आधार पर कर्ममीमांसा की चर्चा की गई है। किन्तु वह नैतिकता को आदर्श के ऐसे उच्चतम स्तर पर ले जाते हैं, जो व्यावहारिक स्तर पर सम्भव नही हैं। उन्होने अहिंसा के पालन करने में ऐसे नियम स्थापित किये हैं, जिनका पालन करना सम्भव ही नही हैं। इसप्रकार, इन परम्पराओं में प्रतिपादित कर्म का सिद्धान्त सार्वभौमिक एवम् सार्वकालिक आचार प्रस्तुत नही कर पाते हैं। ये सारे कर्म के सिद्धान्त पूर्णतया एक आदर्श कर्म की स्थापना करने में सक्षम नही है, जिसका पालन प्रत्येक स्थिति में सम्भव हो। महाभारत में भी भीष्म ने स्वयं यह तथ्य स्वीकार किया है कि ऐसा कोई आचार नही है, जो सर्वहितकारी हो। कोई आचार किसी के लिये हितकारी है, वह किसी अन्य के हित में बाधा उत्पन्न करता है–

न हि सर्वहितः कश्चिदाचारः संप्रवर्तते।
तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः॥ [v]

अतः धर्म-अधर्म, कर्तव्य आदि का निर्णय करने के किये कोई आदर्श व्यवस्था नही है। वास्तव में कर्म के विषय में यह कथन उचित ही है कि "सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य" अर्थात् धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। कोई भी शास्त्र ऐसा आधारभूत सिद्धान्त का निर्माण करने में सक्षम नही हो पाया है जिससे करणीय-अकरणीय आचार का सिद्धान्त प्रत्येक परिस्थिति एवं प्रत्येक काल में अपवाद के बिना स्वीकार किया जा सके। अतः निश्चित ही आदर्श रुप से किसी अन्य सिद्धान्त की अपेक्षा है, और वह आदर्श सिद्धान्त गीता में प्रतिपादित निष्काम कर्म का सिद्धान्त है, जो प्रत्येक स्थिति में धारण करने योग्य है। इसीलिये गीता १६.२४ में "कार्याकार्य व्यवस्थित" पद का प्रयोग किया है। अतः कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। गीता का कर्म का सिद्धान्त कर्मयोग कहलाता है, और यह निःस्वार्थ की भावना से प्रेरित हैं। प्रत्येक काल एवं स्थान में बिना किसी अपवाद के स्वीकृत है। भारतीय संस्कृति अध्यात्मकज्ञानपरक होते हुए कर्म करने के लिये प्रेरणा देती है। किन्तु वही कर्म कल्याणकारी होता है, जो बिना किसी आकांक्षा, आसक्ति, ममता तथा अहंकार के लिये जाये। ऐसा कर्म प्रत्येक स्थिति में बिना किसी अपवाद के पालन करने योग्य होता है। अतः सम्पूर्ण भारतीय परम्परा में निष्काम कर्म के सिद्धान्त का सर्वोत्तम स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Gita with Hindi Translation, Gita Press, Gorakhpur, 2005
2. ऋग्वेद संहिता, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2016
3. अथर्ववेद संहिता, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2019
4. ईशावास्योपनिषद्, विमला कर्नाटका, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 2015
5. आचार्यभर्तृकृतशतकत्रयम्, ललित कुमार मण्डल, परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 2003
6. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2010
7. महाभारत, पण्डितरामनारायणदत्तपाण्डेय, गीता प्रकाशन, गोरखपुर, 2018
8. श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2011
9. मनुस्मृति, हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा कृष्णदास अकेदमी, वाराणसी, 2019
10. श्रीमद्भागवतपुराण, प्यारे लाल त्रिवेदी, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 2019
11. श्रीपद्मपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2018
12. योगवासिष्ठ्य, श्रीकृष्णपन्त शास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2019
13. नैष्कर्म्यसिद्धि, सुरेश्वराचार्य, श्री दक्षिणामठ प्रकाशन, वाराणसी, 2012

[i] ईशावास्योपनिषद्, 2
[ii] मनुस्मृति, 10.63
[iii] मनुस्मृति, 8.35
[iv] महाभारत, शान्तिपर्व ३१९.१३; २८७.१९
[v] महाभारत, 12.266.17